आध्यात्मिक विकास के सोपान

यतीन्द्रविजयजी
न्याय, व्याकरण-काव्यतीर्थ साहित्यशास्त्री

भूमिका

अनादिकाल से वासनाजन्य संसार में कर्म बंधनों से आबद्ध चेतन प्रतिसमय कर्मजन्य विभावदशा द्वारा आरोह अवरोह के झूला में झूलता रहता है। कभी वह उन्नत दशा में रहता है, कभी अवनत दशा में रहता है। अतः चेतन का विकास पतन के नापक (बैरोमीटर) रूप गुणस्थान जैन शास्त्रों में गंभीरता के साथ शास्त्रीय विषय का मुख्य स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

पूर्व महर्षियों ने इन गुणस्थानों का स्वरूप, लक्षण एवं विस्तार के कई पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ निर्माण करके तत्व जिज्ञासु महानुभावों की जिज्ञासा तृप्त करने हेतु भगीरथ पुरुषार्थ किया है। तदनुसार मैं भी यत्किंचित् रूप से गुणस्थान के स्वरूप द्वारा आध्यात्मिक विकास की मुख्य भूमिका इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा हूं।

चेतन का विकासक्रम

शरीर के अंगोपांग का विकास शारीरिक विकास कहा गया है। मन से संबंधित विकास मानसिक विकास माना गया है इसी प्रकार चेतन के मूलभूत गुण का विकास आध्यात्मिक विकास से संबोधित किया है।

शरीरधारी प्राणियों की अवस्था में बाल, युवा, वृद्ध का क्रम होता है।

ऋतु में शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा का क्रम होता है।
काल में भूत, भविष्य, वर्तमान का क्रम होता है।
लोक में स्वर्ग, मृत्यु, पाताल का क्रम होता है।

वैसे ही चेतन के विकासक्रम में बाह्यात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा का विकास क्रम निर्देशित है, जैन दर्शन में यही विकास क्रम के अन्तर्गत चौदह गुणस्थान की चर्चा की गई है। इन चौदह गुणस्थानों के माध्यम से ही चेतन का विकास क्रम परिलक्षित होता है, प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान में बाह्यात्मा, चौथे से बारहवें गुणस्थान में अंतरात्मा एवं तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में परमात्मा का स्थान निश्चित किया है।

गुणस्थान की परिभाषा

चेतन के गुण या शक्ति का साक्षात्कार जिन स्थानों में किया जाय अर्थात् कि आत्मशक्ति या विकास की भूमिका जो बतला दे उनको गुणस्थान कहते हैं।

अनंत गुणों को प्रकर्ष, अपकर्ष की तरतमता को ध्यान में लेवें तो अनंत गुणस्थान हो जाय किन्तु जिज्ञासु सरलता से आत्मविकास की भूमिका को जान सके इसलिये गुणस्थान की संख्या चौदह निर्धारित की है।

गुणस्थान के नाम

(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान
(२) सास्वादन गुणस्थान
(३) सम्यक् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान
(४) अविरत सम्यदृष्टि गुणस्थान
(५) विरताविरत (देशविरती) गुणस्थान
(६) प्रमत्त गुणस्थान
(७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान
(८) निवृत्ति गुणस्थान
(९) अनिवृत्ति गुणस्थान
(१०) सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान
(११) उपशांत मोह गुणस्थान
(१२) क्षीणमोह गुणस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान

गुणस्थानों की उपयोगिता

यह एक सनातन नियम है कि जो कोई पदार्थ में परिवर्तन न होता हो तो उनके विषय में कुछ सोचना ही व्यर्थ है। अतः चेतन में कुछ परिवर्तन होता है इससे मालूम होता है कि चेतन अनादिकाल से अशुद्ध दशा में रहा था। क्रमशः उनमें विकास होने लगता है तो वह मंद या तीव्र गति से ऊपर आरोहण करता हुआ गुणस्थानों की भूमिका पार कर शुद्ध-शुद्ध निरंजन निराकार शाश्वत धाम में पूर्ण विकास की श्रेणी पर पहुंचता है। अतः चौदह गुणस्थानों की उपयोगिता चेतन के विकास निमित्त अत्यन्त आवश्यक है।

गुणस्थान का संक्षिप्त स्वरूप

(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान

वीतराग प्ररूपित विभिन्न पदार्थों के स्वरूप प्रति दर्शन-मोहनीय के प्रभाव से विपर्यास मति द्वारा शुद्ध को अशुद्ध, सत्य को असत्य, निर्मल को मलिन के रूप में प्रतिभासित करने वाली अवस्था मिथ्यात्व की मानी जाती है वही अवस्था प्रथम गुणस्थान की मानी गई है। जब तक आत्म-प्रदेश पर से दर्शन मोहनीय कर्म का आवरण नहीं हटता है तब तक चेतन शुद्ध पदार्थ प्रति रुचि धारण नहीं करता है। कोई कहता है कि जहाँ केवल अशुद्ध वातावरण एवं विपर्यास दशा है उनको गुणस्थान कैसे कहा जाय? प्रत्युत्तर में ज्ञानी पुरुषों ने दर्शाया कि यद्यपि प्रथम गुणस्थान में दृष्टि अशुद्ध होती है फिर भी कुछ जीवों में भद्र-परिणाम, सरल प्रकृति आदि गुण दिखाई देता है अतः मिथ्यादृष्टि की भूमिका भी गुणस्थान के रूप में निर्धारित की है।

(२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

अनादिकालीन संसार चक्र में परिभ्रमण करता चेतन तथाविध परिणाम के द्वारा आयुवर्जित सात कर्मों की स्थिति को घटाकर करीबन एक कोड़ी-कोड़ी सागरोपम जितनी स्थिति रखकर राग द्वेष की निबिड ग्रंथी के समीप पहुंचता है। जो शिथिल पुरुषार्थी होता है वह राग द्वेष की ग्रंथी की घनता देखकर वापस लौट जाता है, जबकि जो प्रबल पुरुषार्थी होता है वह राग द्वेष की ग्रंथी को तोड़कर सम्यग्दर्शन के निर्मल परिणाम को प्राप्त करता है। वही परिणाम की धारा बढ़ाता हुवा मुक्ति के मंगल मंदिर में अग्रसर होने के बावजूद सम्यग्दर्शन की निर्मल धारा से परिस्थितिवश च्युत होता है, तब सम्यग्दर्शन का स्वाद एवं मिथ्यात्व का मिश्रण जिस भूमिका पर होता है उनको सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। क्षीर का भोजन करने पर वमन होता है तब कुछ अंश क्षीर का स्वाद प्राप्त होता है वैसा इस गुणस्थान में चेतन को सम्यग्दर्शन का स्वाद प्राप्त होता है।

(३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान (मिश्र)

विचित्र परिणाम की धारा में बहता चेतन कभी-कभी न तो शुद्ध पदार्थ की श्रद्धा करता है एवं न अशुद्ध पदार्थ को छोड़ता है। अतः संदिग्ध विचारधारा में डूबे हुए संसारी जीव को जो भूमिका प्राप्त होती है उसको सम्यग्-मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहते हैं। इस भूमिका पर बैठे चेतन को मिथ्यात्व का विष मूर्छित अवश्य करता है, किन्तु प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा यहाँ पर उनका प्रभाव कमजोर माना गया है।

प्रथम और तीसरे गुणस्थान में फर्क इतना ही है कि प्रथम में चेतन एकांत मिथ्यावादी रहता है, जबकि तीसरे में संदिग्ध दशा में रहने के कारण सत्य की ओर जाना एवं असत्य की ओर से रुकना असंभव सा लगता है। अन्न के स्वाद का अनजान की सुन्दर अन्न से निर्मित भोजन के प्रति अपेक्षा होती है वैसे मिश्र परिणाम के वशीभूत होकर चेतन शुद्ध पदार्थ केप्रति अपेक्षा धारण करता है।

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

जीवाजीवादि नव तत्वों की शुद्ध श्रद्धा की ज्योति अंतःकरण में प्रज्वलित करके चेतन अनादिकालीन मिथ्यात्व के गहरे अंधेरा को दूर करने के पश्चात् शुद्ध पदार्थ की सच्ची रुचि प्राप्त करे उस भूमि का नाम अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है। यद्यपि इस भूमिका पर पहुंचने के बावजूद चारित्र मोहनीय का उदय रहता है। अतः अनित्य संसार के अनित्य पदार्थों से विरक्ति नहीं प्राप्त होती है किन्तु अनित्य पदार्थ के राग की मलीनता अंतर से धुल जाती है एवं मोक्ष मार्ग की साधना में सन्निष्ठ वफादार उम्मीदवार बनकर मुक्ति रूपी **मानिनी** का प्रियतम होने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त करता है। जड़ पदार्थों की आसक्ति रूप आवरण में ढंका चेतन की पहिचान शुद्ध दर्शन से होती है। अतः यह चतुर्थ गुणस्थान मोक्ष मार्ग में सीमा स्तंभ के रूप में शोभता है। यह गुणस्थान की प्राप्ति की पहिचान शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य रूप पाँच लक्षणों से होती है।

(५) विरताविरत (देशविरति) गुणस्थान

निर्मल-दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् चेतन को शुद्ध चारित्र गुण की प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के प्रभाव से चेतन विरति रूप चारित्र को प्राप्त नहीं करता है, फिर भी दर्शन प्राप्ति के बाद कुछ अंश में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से व्रत नियम प्राप्त करता है, उनको देशविरति कहते हैं। वह देश विरति जीवन की भूमिका को विरताविरत गुणस्थान के रूप में संबोधित करते हैं।

(६) प्रमत्तसंयत गुणस्थान

इस भूमिका पर सम्यग्दृष्टि आत्मा का आगमन होने के बाद हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन, परिग्रह रूप पाँच पापों का शुद्ध मनवचनकाया से त्रिविध नवकोटि के त्याग के कारण चारित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण का विकास हो जाने से विरति (संयम) आत्मा अवश्य है। साथ में कुछ अंश में प्रमाद रह जाता है। अतः प्रमत्त संयत गुण स्थान के नाम से प्रतिपादित किया गया है।

(७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान

जब आत्म-परिणति की तीव्र जागृति द्वारा संयम के पालन में अप्रमत्तभाव से लगन लगती है, धर्मध्यानादि के आलंबन में प्रयत्नशील बनने की तीव्र झंखना पैदा होती है, तब अप्रमत्त संयत गुणस्थान माना गया है। आत्म-जागृति की मात्रा में वृद्धि सातवें गुणस्थान पर एवं कुछ महत्ता छठे गुणस्थान में मानी गई है, वर्षों के चारित्र पालन में कभी-कभी अप्रमत्तभाव आ जाता है।

(८) निवृत्ति गुणस्थान

संसार के चक्र में फँसे चेतन को कभी जो परिणाम की प्राप्ति न हुई हो, वह परिणाम, अपूर्व आत्म परिणाम इस गुणस्थान में होती है। कोई यहाँ से विकासगामी चेतन मोहनीय कर्म की मलिनता को दबाकर नौवें-दशवें गुणस्थान में होकर ग्यारहवें में पहुँचता है किन्तु वहाँ दबी हुई मोह कर्म की प्रकृति प्रभावशील होकर चेतन को नीचे गिराती है एवं उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। साधना की दो श्रेणी मानी गई है एक उपश्रम श्रेणी, दूसरी क्षपक श्रेणी। उपश्रम श्रेणी का साधक ऊपर पहुँचकर भी वापस नीचे गिरता है, क्षपक श्रेणी का साधक स्थिर कदम से विकास के आगे ही बढ़ता है। अतः आठवां गुणस्थान दो रास्ते के रूप में निर्धारित है।

(९) अनिवृत्ति गुणस्थान

आठवें गुणस्थान की साधना का कार्य चेतन यहां आकर आगे बढ़ाता है। यहां आने के बाद मोह कर्म का शमन करता है या क्षय करता है। मोह कर्म के अभाव में या दबाव में आने के पश्चात् कामवासना का भी लय होता है। चूँकि सूक्ष्म या सुप्त कामवासना कभी-कभी साधक को अपनी साधना से नीचे गिरा देती है अतः यहाँ पर सूक्ष्म कामवासना का नाश हो जाने से साधक का रास्ता सरल हो जाता है।

(१०) सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान

परिणाम की उच्च धारा के कारण अंतःकरण से स्थूल कषायों की मात्रा में कमी आती है, साथ में सूक्ष्म कषाय भी यहाँ आने के बाद नष्ट होने की स्थिति पर पहुंचता है। दशवें गुणस्थान पर क्रोध, मान, माया के नाश के अलावा सूक्ष्म लोभ भी दब जाता है या क्षय पाता है, अतः सूक्ष्मसापराय गुणस्थान माना गया है।

(११) उपशांत मोह गुणस्थान

कर्म-पाश के बंधनों को काटता चेतन स्वतंत्र स्वरूप अभिव्यक्ति को पाकर कम से कम एक समय एवं अधिक से अधिक अंतर्मूहुर्त तक यह गुणस्थान की मनोहर भूमिका पर परमोच्च वीतराग दशा का अनुभव करता है। बादलों से ढँके सूर्य की प्रभा कभी छिप जाती है कभी खुलती है। वैसे ही कर्मों के आवरण से घिरे चेतन की ज्ञान प्रभा प्रकाशित होती है, कभी तिरोहित होती है। इस भूमिका के परिणाम की विचित्रता के कारण कभी-कभी मोह-मुक्ति के निकट पहुंचने के बावजूद नीचे गिरना पड़ता है। यहाँ से छठे-सातवें, पाँचवें-चौथे या पहले गुणस्थान पर चेतन पहुँच जाता है।

(१२) क्षीणमोह गुणस्थान

विकासक्रम के ग्यारह सोपान का आरोही चेतन कर्म संग्राम में जूझता यहां आकर मोह कर्म का क्षय रूप विनाश करके विजय श्री की पुष्पमाला पहनने योग्य बन जाता है। एक ही मोह-कर्म का क्षय हो जाने से अन्य घातीकर्म शीघ्रता से अपना डेरा-तम्बू चेतन के आत्मप्रदेशों से उठाने लग जाते हैं। यह गुणस्थान की महिमा ही अनोखी है। इसका नाम क्षीणमोह गुणस्थान कहा गया है।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान

बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय पर पहुँच कर मोह, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, इन चार कर्मों को क्षय कर तेरहवें गुणस्थान में आते ही चेतन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य रूप चार आत्म-गुणों की प्रभा का विस्तार बढ़ाने लगता है। सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी बनकर शेष अघाती कर्मों के विपाक का अनुभव सहज भाव से करता है। तेरहवें सोपान के आरोहण पश्चात् मुक्ति के किनारे लगने में अब कोई आंधी तूफान आने वाला नहीं है। निराबाध रूप से मुक्ति की मंजिल में पहुँचना यहाँ से ही होता है।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान

सयोगी केवली अपनी आयु के अंतिम क्षणों में मन, वचन एवं काय योग का निरोध करके अयोगी अवस्था में प्रवेश करता है। योगरोधन की प्रक्रिया से आत्मप्रदेशों में, शैलेसीकरण द्वारा अपूर्व स्थिरता पैदा होती है यही निष्कंप दशा में पांच ह्रस्वाक्षर के उच्चारण की अल्प समयावधि में चेतन मुक्ति के मंगल मंदिर में बिराजमान होता है।

विकास की चरम सीमा

आध्यात्मिक विकास के चौदह सोपान के आरोहण पश्चात् शुद्ध-बुद्ध निरंजन-निराकार, चिदानन्द स्वरूप चेतन के विकास की यही चरम सीमा है। इससे बढ़कर विकास की अवस्था संसार में कहीं नहीं है। अवनति का चरम बिन्दु मिथ्यात्व एवं उन्नति का चरम बिन्दु मोक्ष है। दोनों बिन्दुओं के बीच साधना का दीर्घ मार्ग बना हुआ है। जागृति, विकास में सहायक होती है, प्रमाद विनाश में सहायक होता है। जागृति एवं प्रमाद के जनक ध्यान को माना गया है। शुभ ध्यान जागृति का जनक है, अशुभ ध्यान प्रमाद का जनक है। ध्यान एवं गुणस्थान दोनों में क्षीर-नीर जैसी मैत्री है। चार ध्यान में से प्रथम दो आर्त, रौद्र एक से तीन गुणस्थान पर, चौथे-पाँचवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org